पेरिस
अप्रील ४, २००८

सन्देश संख्या १३८

तुलना से मुक्ति

शिवेन्दु के पिताजी उच्च–तल की क्रिया दीक्षा–दान के मामले में रूढ़िवादी थे, क्योंकि वे जानते थे कि उच्च क्रिया की चाह मन अर्थात् ''मैं'' की लालसा हो सकती है जो चाहने के द्वारा अपने को बनाये रखता है । चाहना उत्तेजना है और उत्तेजना, चिन्ता, पीड़ा आदि सभी मिथ्या ''मैं'' को बनाये रखने के साधन हैं । अतः वे कहा करते थे – प्रथम तल की क्रिया के साथ धैर्यपूर्वक रहो, अपनी चेतना में कुछ घटित हो जाने दो । तुम इतने अशान्त हो, तुम्हारा सम्पूर्ण अस्तित्व सभी प्रकार की अशान्ति को प्रतिबिम्बित कर रहा है और फिर भी तुम दावा करते हो कि तुमने प्रथम तल की क्रिया को समझ लिया है । और अभ्यास भी किया है । कृपा कर धैर्यवान बनो और आन्तरिक चेतना में झाँककर देखो कि वहाँ क्या हो रहा है और तब उच्च क्रिया के लिए आओ ।

दूसरी तरफ शिवेन्दु उदार है । जब कोई उच्च क्रिया हेतु मेरे पिताजी के पास आता था तो वे बहुत प्रश्न पूछते थे । शिवेन्दु कहता है–''मैं विश्वविद्यालय का कोई परीक्षक नहीं, अतः ऐसा मैं क्यों करूँ?''

वस्तुतः उच्च क्रिया के लिए जब कुछ लोग आते हैं तो शिवेन्दु स्पष्टतः समझ जाता है कि उन्होंने कुछ भी अभ्यास नहीं किया है, वे बहुत धूर्त्त हैं और वे केवल अपना अहंकार–पोषण जारी रखना चाहते हैं ।

अतः प्रश्न है, जब पिताजी रूढ़िवादी थे तो शिवेन्दु क्यों नहीं?

शिवेन्दु प्लास्टिक–पुष्प नहीं है । यदि वह बिल्कुल अपने पिता की तरह होता तब वह अपने पिता का प्लास्टिक–प्रतिलिपि होता । शिवेन्दु के शरीर में स्वतंत्र–प्रस्फुटन हुआ है । पिता और पुत्र के मध्य विविधता तो है लेकिन विभाजन नहीं । विविधता जीवन है जबकि विभाजन–मन ।

शिवेन्दु के पिताजी के पास समझदारी की ऊर्जा थी और वे रूढ़िवादी थे फिर भी, शिवेन्दु द्वारा उच्च–क्रिया का उदार वितरण समझदारी की कमी के कारण नहीं है । यहाँ भी पूर्ण समझदारी है किन्तु रुढ़िवादिता की कमी है । पिताजी रूढ़िवादी होकर भी रह सकते थे क्योंकि वे एक ही स्थान पर रहते थे। वे शायद ही कहीं बाहर निकलते थे । परन्तु शिवेन्दु के पास पूरी दुनिया में सम्पूर्ण मानवता के साथ होने का सुन्दर अवसर है । इसीलिए यह उदारता घटित होने दिया जाय ।

संदेशों का 'सार' एक ही है, परन्तु शरीर के नैसर्गिक गुणों एवं परिस्थितियों ने उनके वितरण के तरीके को बदल दिया है । 'सार' की तुलना नहीं की जाती जबकि वितरण के तरीके की की जाती है । चूँकि मन तुलना करता है इसीलिए समझदारी से वंचित रह जाता है और अनुमानों में फँस जाता है ।

कृष्ण (सर्वव्यापक चैतन्य) जब बाँसुरी बजाते हैं तो 'सार' संगीत (संदेश) होता है जो बाँसुरी (सद्गुरु) के खालीपन से निकलता है । एक बाँसुरी की धुन दूसरे बाँसुरी की धुन से अलग हो सकती है ।

संगीत का श्रवण और उसके विभिन्न धुनों के माधुर्य का रसास्वादन तभी संभव है जब श्रवण तुलना रहित हो जिससे उसके ध्वनि के आरोह–अवरोह को ध्यानपूर्वक सुना जा सके और उसका आनन्द लिया जा सके ।

समझदारी की ऊर्जा में रहें और तुलना से मुक्त रहें । सभी क्रियायें मुक्ति और प्रेम से उत्पन्न होती हैं न कि तनाव, विरोध, स्वयं की पूर्णता की खोज या सत्ता के घमण्ड से । परम का कोई संकेत या चिह्न नहीं होता, वह किसी व्यक्ति का नहीं होता, वह किसी देवता का भी नहीं होता ।

समझदारी एक विध्वंसकारी झलक है न कि कोई साधारण घटना । इस विध्वंस से ''मैं'' हमेशा डरता है और वह जाने–अनजाने इससे बचता है । यह विध्वंस ही क्रिया के पथ को प्रकाशित करता है और उस प्रकाश के बिना प्रेम सम्भव नहीं ।

।। जय विध्वंस ।।